सन्त काव्य के विविध पहलू

डॉ0 नीरज कुमार द्विवेदी
असि0 प्रो0–हिन्दी विभाग
दयानन्द वैदिक कॉलेज, उरई।

हिन्दी भक्ति काव्य में सन्तकाव्य का मूल्यवादी एवं सामाजिक समता तथा परमार्थिक जीवन दर्शन की दृष्टि से अत्यंत महत्त्व है। इसे ज्ञानाश्रयी शाखा या निर्गुण भक्ति धारा भी कहा गया है। सामान्यतः सन्तकाव्य विधि निषेध का काव्य है, इस दृष्टि से इसमें खंडन–मंडन की प्रवृत्ति बहुत अधिक मिलती है। सन्तकाव्य का उद्‌भव व विकास बहुत कुछ नाथपंथियों एवं सिद्धों की सैद्धांतिक मान्यताओं की पृष्ठभूमि में विद्यमान है। भक्ति आंदोलन ने सांस्कृतिक दृष्टि से इस पृष्ठभूमि को प्रेरणा, प्रभाव एवं परिवेश प्रदान किया। हिन्दी के धार्मिक साहित्य में सन्त काव्य जनजीवन के धार्मिक उन्मेष का नया प्रयोग है, यही कारण है कि सामान्य जीवन की स्वभाविक भावभूमि पर धर्म की जो प्रेरणा उत्पन्न हुई उसका अभिव्यक्तिकरण जनभाषा द्वारा ही हुआ। भक्ति काव्य में सामान्यतः आस्था और विश्वास की दो धाराएं चलती दीख पड़ती हैं, जिनमें प्रथम पौराणिक मतवाद है जिसके मूल में सगुण ब्रह्म एवं उसके अवतार की अवधारणा विद्यमान है, तो दूसरी ओर ज्ञानमार्गी शाखा के कवि ज्ञान को प्रमुख तत्व मानते हुए सगुण मतवाद का खंडन करते हैं। उन्होंने पौराणिक धार्मिक विश्वासों, मूर्तिपूजा, कर्मकाण्ड एवं वाह्याचारों आदि का विरोध किया है। सन्त कवि प्रायः समाज के निम्न वर्गों से संबंधित थे, जिनके कारण उनकी काव्यगत संवेदना में पृथक धारणा विद्यमान है। कबीरदास, मलूकदास, दादूदयाल, पीपा, रैदास, नानक, बोधा, धर्मदास, सुन्दरदास रज्जब आदि प्रमुख सन्त कवि हैं।

सन्तकाव्य भावात्मक एवं अनुभूति प्रवण है, उसका जीवन दर्शन अत्यंत उदार, व्यापक, पूर्वाग्रहमुक्त एवं प्रेममय है। लौकिक जीवन के श्रेष्ठ तत्वों की व्यंजना सन्तकाव्य के विषय पक्ष में विद्यमान है। इस काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियां में ज्ञान मार्ग की प्रधानता, निर्गुण ब्रह्म में विश्वास, अवतारवाद का खण्डन, मूर्तिपूजा का विरोध, विनय की महिमा, गुरु महिमा, जीवन और जगत् की नश्वरता, दांपत्य भावभक्ति का निरूपण, सामाजिक समता की भावना एवं बाह्याचारों एवं कर्मकांडों का खण्डन, जनभाषा का प्रयोग आदि सम्मिलित हैं।

ब्रह्म सृष्टि का परम तत्व है, कण–कण में व्याप्त है, सन्त कवि इस तथ्य का उद्‌घाटन अनेकशः करते हैं। कबीर के निर्गुण राम सर्वनिरपेक्ष होते हुए भी एक हैं–

हमारे राम–रहीम करीमा केसो अल्लह राम सति सोई।
बिस्मिल मेहि विसंभर एकै और न दूजा कोई।।

इसी परमतत्व की सर्वात्मानुभूति नानकदेव ने भी अपनी बानियों में की है–

काहे रे बन खोजन जाई,
सर्वनिवासी सदा अलोपा तोही संग समाई।।

इस परमतत्व से सन्तकबीर सहज संबंध स्थापित करते हैं, वे दाम्पत्य प्रतीकों का चयन करते हैं, माधुर्य भाव से सम्बद्ध होकर परमात्म भाव में लीन रहते हैं, इनके काव्य में रहस्यवाद

और उसके मूल में प्रेमानुभूति की प्रधानता है। इस प्रेमानुभूति में विरह की सतत अनुभूति उनकी साधना दीप्ति का परिचायक है–

बहुत दिनन की जोबती बाट तुम्हारी राम,
जीव तरसै तुझ मिलन को मन नाहि विश्राम।।

सन्त साधक आत्मा–परमात्मा के विछोह से व्यथित रहते हैं। वे अहर्निश (रात–दिन) उस परमतत्व की प्रेमानुभूति में मगन रहने वाले हैं। दादूदयाल की प्रेमानुभूति विरह को व्याकुल भावना का परिचय प्रस्तुत उदाहरण में द्रष्टव्य है–

विरह जगावै दरद को, दरद जगावै जीव,
जीव जगावै सुरति को, पंच पुकारे जीव।

भक्ति को मध्यकाल में परमपुरुषार्थ के रूप में वर्णित किया गया है। प्रायः सभी कवि भक्ति जन्य आनन्द की अभिव्यक्ति करते हैं। सुंदरदास ने इस आनन्दानुभूति को इस प्रकार व्यक्त किया है–

है यह अति गम्भीर उठती लहर आनंद की,
मिष्ट सुजाको नीर, सकल पदारथ मध्य है।

गुरु की महिमा अनन्त एवं अपार है। वस्तुतः सन्त कवि ज्ञान मार्ग की जिस सीढ़ी पर चढ़कर चले इसका बोध सतगुरु के माध्यम से संभव है–

सतगुरु हम सूं रीझि कर कहया एक प्रसंग,
बरस्या बादल प्रेम का भीज गया सब अंग।।

विनय एवं नम्रता सन्त कवियों की भावात्मकता का विधेयात्मक पक्ष है जहां उनमें खण्डनात्मक प्रवृत्ति की प्रधानता थी, उनमें उसका अक्खड़पन परिलक्षित होता था परंतु उनकी मूल संवेदना अत्यंत मृदुल एवं लोकोपयोगी थी–

लघुता से प्रभुता मिले, प्रभुता से प्रभु दूरी,
चींटी शक्कर ले चली, हाथी के सिर धरि।

मूलरूप से सन्त संप्रदाय का सम्बन्ध वेद विरोधी विचारधारा से जोड़ा जाता है। सन्तों ने बौद्ध, सिद्धों एवं नाथों की विचारधारा को आत्मसात करते हुए युगीन परिप्रेक्ष्य में अपनी धार्मिक तथा सामाजिक मान्यताओं को प्रचारित किया। सन्तों ने विट्ठल संप्रदाय के नाम स्मरण, रहस्य भावना तथा प्रेमाभक्ति को ग्रहण किया है, भारतीय अद्वैतवाद औपनिषद दर्शन सूफियों की प्रेमभावना, वैष्णव धर्म की अहिंसा, नवधा भक्ति आदि तत्वों को सन्त संप्रदाय में आत्मसात किया गया है। रांगेय राघव के अनुसार–'निर्गुण सन्त समाज के उन क्षेत्रों से आए थे जिन्हें शताब्दियों से कुचला गया था, उन्हें पूर्ण शिक्षा नहीं मिली थी, उन्हें दबकर रहना पड़ता था।'' सन्तों की साधना और वाणी का क्षेत्र केवल स्वांतः सुखाय की भावना एवं वैयक्तिक मुक्ति साधना तक ही सीमित नहीं था, उनके समक्ष सामाजिक एवं धार्मिक आडंबरों की खुली चुनौती थी। डॉ0 रामविलास शर्मा के अनुसार–'उन्होंने धर्म की रूढ़ियों का उल्लंघन किया था, उन्होंने अपने प्रेम के अश्रुजल से देवता के आंगन से रक्तपात की कलंक रेखा धो डाली थी।'

सन्त काव्य देश की राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के फलस्वरूप विरचित, भावनात्मक एवं अनुभूति प्रवण जन काव्य है, इसका प्रेरणा स्रोत था–सामान्य मानव का हित साधन, धार्मिक रूढ़ियों और सामाजिक–सांस्कृतिक परंपराओं का अंधानुकरण न करना, वर्णाश्रम व्यवस्था का विरोध, क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा आदि की निंदा, सदाचार आदि गुणों की प्रतिष्ठा, शास्त्रीय ज्ञान की अनिवार्यता का निषेध, आत्मानुभूति की प्रमाणिकता आदि पर बल दिया। सन्त कबीर दरिया साहब के कथन–

दरिया सुमिरन राम का, कर लीजै दिन–रात।

तथा कबीर के अभिमत–

पंडित और मसालची दोनों सूझै नाहिं,
औरन को कर चांदना, आप अंधेरे माही।।

सन्त साहित्य में हृदय की सच्ची प्रेरणा, अकृत्रिमता, सहज सौन्दर्य, सरलता और अनुभूति विद्यमान है। सन्त कवियों ने हिंदू और मुसलमान दोनों जातियों को एकता के सूत्र में बांधने की चेष्टा की। सन्तों का व्यक्तित्व सच्चे अर्थों में संवेदनशील था। इसलिए उनका साहित्य जनभावनाओं की सहज प्रवृत्तियों, परिस्थितियों, विकृतियों और विडंबनाओं का विशाल शब्द चित्र है। इन कवियों ने अपनी वाणी को काव्यांगों के प्रति सचेत होकर व्यक्त नहीं किया। फलस्वरूप उनकी रचनाओं में अलंकारों का सप्रयोजन प्रयोग नहीं लक्षित होता। फिर भी आत्माभिव्यक्ति तथा विचारनिरूपण के संदर्भ में इनकी कविता में रूपक, उपमा, दृष्टांत, तद्‌गुण सहोक्ति, विभावना, काव्यलिंग आदि अलंकारों का प्रयोग अधिकांशतः मिलता है। कहीं–कहीं इनकी सहज भाषा में अलंकारों का उत्कृष्ट प्रयोग भी दृष्टिगत होता है। किस प्रकार उसमें कृ त्रिमता से परे सहज अलंकारिक सौंदर्य विद्यमान है–

नैनों की कर कोठरी, पुतली पलंग बिछाए,
पलकों का चिक डारी के पीय को लियो जाए।

इस प्रकार सन्त काव्य मूलतः सहज एवं प्रमाणिक अभिव्यंजना पर आश्रित है। सन्त कवियों ने जिन मानवीय मूल्यों का प्रतिपादन किया वे अपने युग में अत्यंत प्रगतिशील थे। उनका प्रभाव अद्यतन विद्यमान है। यह अवश्य कहा जा सकता है कि इस प्रगतिशील चेतना का उद्देश्य, स्वरूप समाज की संरचना पर आधारित था, जो सर्वात्मभाव पर बल देता है। इसमें भारतीय संस्कृति सत्य, अहिंसा, ओज, कर्म, श्रेय एवं प्रेय, सत्संग, सात्विकता आदि मानवीय गुणों के रूप में उपस्थित है। अतः यह काव्य भक्ति काव्य के संदर्भ में अत्यंत प्रभावी एवं प्रेषणीय हैं। सन्तों ने लोकजीवन को स्वच्छ और आध्यात्मकपरक बनाने का महत्वपूर्ण कार्य किया, जिससे मध्यकाल में भारतीय जनता के अंतर्गत आचरण की शुद्धता, वचन और कार्य की सत्यता, निष्ठा, अलौकिक शक्ति पर विश्वास आदि गुणों का प्रसार और विकास हुआ।